© 2017 IJSRST | Volume 3 | Issue 6 | Print ISSN: 2395-6011 | Online ISSN: 2395-602X
Themed Section: Science and Technology

संस्कृत साहित्य में सौन्दर्य चिन्तन

दीपचन्द यादव
शोधच्छात्र
संस्कृत विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

पाश्चात्य संस्कृतज्ञों की यह धारणा है कि भारतवर्ष के साहित्य में सौन्दर्य कल्पना के प्रति विद्वानों की दार्शनिक दृष्टि का सर्वथा अभाव है, क्योंकि न तो उन्होंने सौन्दर्य के तत्त्व पर गम्भीरता से विचार किया है और न कहीं उन्होंने इसका विश्लेषण किया है। यह धारणा नितान्त भ्रान्त है। संस्कृत साहित्य के गम्भीर अध्ययन एवं मनन के अभाव का यह द्योतक है। वैदिक ऋषियों की दृष्टि प्रकृति में दृश्यमान सुन्दर वस्तुओं के प्रति सर्वदैव आकृष्ट रही है तथा मन्त्रों में अपनी भावना का उन्होंने बहुशः उन्मीलन किया है।

वैदिक ऋषियों ने इस विशाल प्रकृति के भीतर विराजमान सौन्दर्य का बड़ी गम्भीरता तथा उत्सुकता से अवलोकन किया है तथा उसका रोचक एवं हृदयावर्जक वर्णन मन्त्रों में प्रस्तुत किया है। ऐसे सौन्दर्याधायक रूपों से वैदिक मन्त्र सर्वदा परिपूर्ण हैं। इस रुपवर्णन को देखकर ऐसा कौन आलोचक होगा जो इनके रचयिता को सौन्दर्य भावना से पराङ्मुख स्वीकार करेगा। सौन्दर्य भावना भारतवर्ष के अत्यन्त प्राचीन ऋषियों से आरम्भ कर अर्वाचीन संस्कृत कवियों के काव्यों तक सर्वथा आवर्जक रूप में अनुस्यूत होकर प्रभावित होती है। यथा सर्वथा तथ्य है।

उषा के रूपरंग का वर्णन वैदिक ऋषि ने अनेक सूक्तों में विस्तार से किया है। कवि की दृष्टि उषा के रमणीय रूप पर पड़ती है और वह एक सुन्दर मानवी के रूप में उसे देखकर प्रसन्न होकर कहता है–हे प्रकाशवती उषा, तुम कमनीय कन्या की भाँति अत्यन्त आकर्षणमयी बनकर अभिमत फलदाता सूर्य के निकट जाती हो और उसके सन्मुख स्मितवदना युवति की भाँति अपने वक्षः स्थल को आवरणरहित करती हुई अपने आपको प्रकाशित करती हो।[1]

सौन्दर्य

'सुन्दरस्य भावः सौन्दर्यम्'। सुन्दर के भाव को सौन्दर्य कहते हैं। ''सुष्ठु उनत्ति आर्द्रीकरोति चित्तम्'' इति सुन्दरम्। सुन्दर वह वस्तु है जो चित्त के वश में होकर सर्वथा शुष्क बना रहता है। ज्यों ही उसकी दृष्टि सुन्दर वस्तु पर पड़ती है, उसी क्षण में उसके चित्त में मृदुता, कोमलता तथा सरसता का संचार हो उठता है। इसी व्यापार के कारण प्रातःकालीन उषा, या विकसित पुष्प, या कमनीय कोमलांगी

अंगना के दर्शनमात्र से द्रष्टा के चित्त की मृदुता के कारण इन वस्तुओं में हमें सौन्दर्य का दर्शन होता है। विषयवस्तु के ग्रहण में श्रोत्र की अपेक्षा चक्षु इन्द्रिय को श्रेष्ठता सर्वत्र स्वीकार की गई है। इसीलिये श्रोत्रेन्द्रिय की अपेक्षा चक्षु से गृहीत वस्तु पर अधिक विश्वास होता है।

सौन्दर्य की मोहिनी शक्ति का अनुभव पदे पदे होता है। सुन्दर रूप का प्रभाव है मोहन, मोह उत्पन्न करना, प्राणी को मुग्ध कर देना, अन्य इन्द्रियों के व्यापार को अभिभूत कर चक्षुरिन्द्रिय के व्यापार को जागरूक रखना। इस मोहिनी शक्ति का अनुभव संस्कृत साहित्य में बहुशः चित्रित किया गया है। श्रीमद्भागवत में श्रीकृष्ण के द्वारा रुक्मिणी हरण के प्रसंग में इसका सद्यः प्रभाव वर्णित है। श्रीकृष्ण के द्वारा किये गये हरण का ज्ञान उपस्थित राजाओं को कथमपि नहीं हो सका, क्योंकि स्वयंवर में समागत नृपतिगण रुक्मिणी के रूप को देखकर मुग्ध हो गये थे–चेतनाहीन हो गये थे। भागवत का कथन है–

पदा चलन्तीं कलहंसगामिनीं
शिञ्जतु कलानूपुर धामशोभिना।
विलोक्य वीरा मुमुहुः समागता
दशस्विनरतत्–कृत–हृच्छयार्दिताः।।[2]

लावण्य

सौन्दर्य का साहित्य शास्त्रानुमोदित प्रतिनिधि भूत शब्द लावण्य है। अलंकार शास्त्र के धनी मौलिक चिन्तनों के आचार्य आनन्दवर्धन ने ध्वन्यालोक में तथा ग्रन्थ की गम्भीर व्याख्या 'लोचन' में आचार्य अभिनव गुप्त ने इस तत्व के मौलिक तथ्यों का उन्मीलन बड़ी सुन्दरता से किया है। प्रतीयमान व्यंग्य अर्थ (ध्वनि) की सत्ता वाच्य अर्थ से पृथक् होती है–

प्रतीयमानं पुनरन्यदेव वस्त्वस्ति वाणीषु महाकवीनाम्।
यत्तत् प्रसिद्धावयवातिरिक्तं विभाति लावण्यमिवाङ्गनासु।।[3]

इसकी वृत्ति में उनका स्पष्टीकरण इस प्रकार है कि–

यथा हि अङ्गनासु लावण्यं पृथङ् निर्वर्ण्यमानं
निखिलावयवव्यतिरेकि किमपि अन्यदेव सहृदय–
लोचनामृतं तत्वान्तरं तद्वद् एवं सोऽर्थः।[4]

महाकवियों की वाणी में प्रतीयमान व्यंग्य अर्थ वाच्य अर्थ से भिन्न उसी प्रकार प्रकाशित होता है, जिस प्रकार रमणीय अंग वाली ललनाओं में दृश्यमान लावण्य निखिल अवयवों से सर्वथा पृथक् रूप से सहृदयों के लोचन को आनन्द देनेवाला अमृत रूप भिन्न तत्त्व ही है। वह अंग विशेष में अपनी सत्ता नहीं

रखता, प्रत्युत उससे पृथक् होता है और सहृदय दर्शकों के नेत्रों को आनन्दित करता है। अंगों के साथ लावण्य के सम्बन्ध का निर्देश अभिनवगुप्त ने 'लोचन' में बड़ी मार्मिकता से कहा है कि–

लावण्यं हि नाम अवयव संस्थानाभिव्यङ्गयम्

अवयवव्यक्तिरिक्तं धर्मान्तरमेव।[5]

अवयवों–शरीर के अंगों की निर्दोषता न लावण्य होता है और न वह अलंकार के योग में ही लावण्य का अस्तित्व होता है। लावण्य अवयवों के संस्थान के द्वारा अभिव्यक्त किया जाता है तथा अवयवों से व्यतिरिक्त पृथग्भूत होने वाला अन्य धर्म ही होता है। लावण्य किसी अंगविशेष में नहीं रहता, बल्कि वह अंगों के सुन्दर संस्थान के द्वारा अभिव्यक्त किया जाने वाला सद्यः अनुभूयमान एक विशिष्ट धर्म ही होता है।

रुपगोस्वामी ने लावण्य की परिभाषा इस प्रकार दी है–

मुक्ताफलेषु च्छायायास्तरलस्वभिवान्तरा।

प्रतिभाति यदङ्गेषु तत् लावण्यमिहोच्यते।।[6]

अर्थात् मोतियों में एक विशिष्ट आभा होती है। 'पानी' के कारण ही तो मोतियों की इतनी चमक–दमक होती है। मोतियों की शोभा की तरलता–चंचलता के समान अंगों की शोभा में जो तरलता दृष्टिगोचर होती है उसे ही 'लावण्य' कहते हैं।

महाकवि कालिदास ने भी शकुन्तला के लिए 'प्रभा–तरलं ज्योतिः' की समता अभिज्ञान शकुन्तल में दी है–

मानुषीषु कथं वा स्यादस्य रूपस्य संभवः।

न प्रभातरलं ज्योतिरुदेति वसुधातलात्।।[7]

माधुर्य

संस्कृत साहित्य में ''माधुर्य'' शब्द का अनेक प्रसंगों में प्रयोग उपलब्ध होता है। यह शब्द देहयष्टि का सौन्दर्य, मानसिक स्थिति तथा शब्द–गुण इन तीनों के सम्बन्ध में साहित्य में प्रयुक्त किया गया है। सौन्दर्य अर्थ की द्योतना में माधुर्य का लक्षण रूप इस प्रकार है–

रूपं किमप्यनिर्वाच्यं तनोर्माधुर्यमुच्यते।[8]

माधुर्य शरीर के उस रूप का प्रकाशन करता है जिसका निर्वचन शब्दों के द्वारा नहीं हो सकता और इसलिए वह अलौकिक होता है।

माधुर्य नाटक के नायक के सात्विक गुणों में अन्यतम माना जाता है। नायक के नाना अवस्थाप्रभेदों में मन की रमणीयता बनी रहे, उसे ही माधुर्य शब्द से अभिव्यक्त करते हैं। नायिका का यह अयत्नजन्य अलंकार माना जाता है।

चित्त को क्षुब्ध करने वाले अवसर प्राप्त होने पर भी चित्त में उद्वेग न होना माधुर्य कहलाता है। इन दोनों अर्थों में इसका संकेत 'साहित्य–दर्पण' में विश्वनाथ ने इस पद्य में किया है–

(क) सर्वावस्थाविशेषेषु माधुर्य रमणीयता।

(ख) संक्षोभ्वोष्वनुद्वेगो माधुर्यं परिकीर्तितम्।।

माधुर्य लावण्य का ही शब्दान्तर प्रतीत होता है। यह अनिर्वचनीय रूप की द्योतना करता है। कालिदास ने इसका इसी अर्थ में प्रयोग 'अभिज्ञान शाकुन्तल' में किया है–

सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यं
मलिनमपि हिमांशोर्लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति।
इयमधिकमनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी
किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम्।।[9]

अर्थात् राजा दुष्यन्त कहते हैं कि यद्यपि शकुन्तला का कोमल शरीर वल्कलवस्त्र धारण करने के योग्य नहीं है, तथापि यह इसके शरीर के अलंकारों को समान ही सुशोभित कर रहा है, क्योंकि जैसे सेवार से घिरा होने पर भी कमल सुन्दर लगता है, चन्द्रमा में पड़ा हुआ कलंक भी उसकी शोभा ही बढ़ाता है, वैसे ही यह सुन्दरी भी वल्कलवस्त्र पहिने हुए भी अधिक मनोहर दिखाई पड़ रही है। सही बात यह है कि सुन्दर शरीर पर सब कुछ शोभा देने लगता है। ऐसी कौन सी वस्तु है जो मधुर आकृति को भूषित करने का कार्य नहीं करती अर्थात् सभी वस्तुएँ करती हैं।

मधुर शब्द किसी ललना के सामूहिक रूप से व्यंग्य सौन्दर्य के द्योतन के साथ ही साथ अंग–प्रत्यंग को शोभा का भी व्यक्तिशः निर्देश करता है। वल्लभाचार्य के बाल–कृष्ण के प्रत्येक अंक में तथा प्रत्येक व्यापार में माधुर्य का दर्शन कर अपने 'मधुराष्टक' स्तोत्र में बड़े विस्तार से इसका उल्लेख किया है और अन्त में ''मधुराधिपतेखिलं मधुरम्'' मधुरा–मथुरा के अधिपति की समग्र वस्तु ही मधुर है। यह कहकर अपने चित्त के आनन्द को प्रकट किया है। उनका कहना है कि मधुराधिपति की कौन वस्तु है? जो दर्शकों को आनन्द प्रदान नहीं करती।

इस प्रकार चारुता की अभिव्यक्ति के निमित्त ये तीनों शब्द–सौन्दर्य, लावण्य तथा माधुर्य–सामान्य रूप से प्रयुक्त किये जाते हैं।

आनन्द का चिन्तन

आध्यात्मिक चिन्तन के मूलतत्त्व के समान ही सौन्दर्यशास्त्रीय चिन्तन का मूल तत्त्व ''आनन्द'' है। आध्यात्मिक चिन्तन के अनुसार जगत् का आधार परब्रह्म सच्चिदानन्द स्वरूप है। ''सत्यं शिवं सुन्दरं'' इसी सच्चिदानन्द का ही प्रतिनिधित्व करता है। दोनों ही परब्रह्म के स्वरूप का प्रतिपादन करते हैं।

''सत्यं'' सत् का, ''शिवं'' चित् का तथा ''सुन्दरं'' आनन्द का प्रतिनिधित्व करता है। तैत्तिरीय उपनिषद् की ''ब्रह्मानन्दवल्ली'' में ''आनन्द'' का विवेचन बड़े विस्तार से किया गया है। इस उपनिषद् का प्रख्यात सिद्धान्त है–

आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात्।
आनन्दाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।।
आनन्देन जातानि जीवन्ति।
आनन्दं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति।।[10]

अर्थात् उसने ब्रह्म को आनन्द जाना। आनन्द से ही समग्र प्राणी उत्पन्न होते हैं। उत्पन्न होने के अनन्तर वे आनन्द में एवं आनन्द से ही जीवित रहते हैं। अन्त में वे आनन्द की ओर जाते हैं और आनन्द में ही लीन हो जाते हैं।

सौन्दर्य : त्रिविध तथ्य

सौन्दर्य का त्रिविध तथ्य संस्कृत साहित्य में उपलब्ध होता है। प्रथम तथ्य है–सुन्दर वस्तु की प्रतिक्षण नूतनता। रमणीय वस्तु की दशा स्थावर नहीं होती जो एक ही रूप में टिकी रहे। सुन्दर वस्तु में प्रतिक्षण नूतनता का आविर्भाव होता रहता है। सौन्दर्य के इस हृदयस्थानीय तथ्य का प्रकाशन महाकवि माघ की इस सूक्ति में दृष्टिगोचर होता है–

क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति।
तदेव रूपं रमणीयतायाः।।[11]

दूसरा विशिष्ट तथ्य है–सौन्दर्य की अनुभूति में पूर्व अनुभव, जन्मान्तर में होने वाले संस्कारों के उद्‌बुद्ध पर पूर्वानुभूत सौन्दर्य की स्मृति। इस तथ्य का प्रकाशन कालिदास ने अभिज्ञानशाकुन्तल में बड़ी मार्मिकता से अभिव्यक्त किया है–

रम्याणि वीक्ष्य मधुरांश्च निशम्य शब्दान्
पर्युत्सुकी भवति यत् सुखितोऽपि जन्तुः।
तत् चेतसा स्मरति नूनमबोधपूर्वं
भावस्थिराणि जननान्तरसौहृदानि।।[12]

सुन्दर वस्तुओं को देखकर तथा मीठे शब्दों को सुनकर सुखी लोग भी उदास हो जायें, तब यही सोचना चाहिए कि उनके मन में पिछले जन्म के प्रेमियों के जो संस्कार बैठे हुये हैं, वे ही अपने आप जाग उठे हैं।

तृतीय तथ्य है कि पृथ्वीतल पर होने वाली समग्र सुन्दरता भगवान् के अनन्त सौन्दर्य की केवल एक झाँकी है जिसे प्राप्त करना अन्तरात्मा की नैसर्गिक अभिलाषा का परमलक्ष्य है। प्रसिद्ध दार्शनिक मधुसूदन सरस्वती ने भगवान् को ''सौन्दर्य सार–सर्वस्व'' बतलाया है–वह सुन्दरता के सार अंश का सर्वातिशायी निधि है। उसके अप्रतिम सौन्दर्य का, अनन्त रमणीय लीलाचरितों का, कमनीय क्रिया कलापों का वर्णन ही कला का सर्वश्रेष्ठ व्यापार है, क्योंकि वह प्रतिक्षण में नये–नये प्रेम भावों का प्रदर्शन करता है तथा चिरनूतन रमणीय रूपों का दर्शन कराता है।

काव्य सौन्दर्य

काव्य में सौन्दर्य की भावना रसात्मकता के कारण उत्पन्न होती है। रस आनन्द रूप होता है और उसके अस्तित्व के कारण ही काव्य में सौन्दर्य का उन्मीलन होता है। तैत्तिरीय उपनिष्द की सुप्रसिद्ध उक्ति है–

''रसो वै सः। रसं ह्येवायं लब्ध्वा आनन्दी भवति''।[13]

साहित्य शास्त्र के आदि आचार्य भामह काव्य की गरिमा एवं उत्तरदायिता उद्घोष करते हैं कि न ऐसा कोई शब्द है, न वाच्य है, न शिल्प है, न क्रिया है जो काव्य का अंग नहीं हो सकता और इसीलिए इस कार्य के सम्पादन के निमित्त कवि के ऊपर महान् भार है–गम्भीर उत्तरदायित्व है–

न स शब्दो न तद् वाच्यं न तच्छिल्पं न सा क्रिया।
जायते यन्न काव्यङ्गम् अहो भारो महान् कवेः।।[14]

काव्य में रस तथा आनन्द का घनिष्ठ सम्बन्ध है। आचार्य मम्मट ने अपने काव्य–प्रकाश में इस तथ्य का प्रकाशन करते हुए कहा है–

सकल–प्रयोजन–मौलिभूतं समनन्तरमेव रसास्वादन
समुद्भूतं विगलितवेद्यान्तरम् आनन्दम्।

आनन्द जीवन के समस्त पुरुषार्थों का शीर्षस्थानीय होता है, जो रस के आस्वादन के अनन्तर उत्पन्न होता है और जो मन को इतना भर देता है कि व्यक्ति किसी दूसरी वस्तु की अवगति से सर्वथा शून्य हो जाता है। रसास्वादन के समनन्तर ही आनन्द के समुन्मीलन का यही स्वारस्य है। प्रकृति के समस्त पदार्थों में आसक्त होने पर भी भगवान् अपने को अलग रखकर ही उन्हें देखता है, तभी उसे आनन्द की प्राप्ति होती है।

रस ''ब्रह्मानन्द सहोदर माना गया है। रसानन्द को ब्रह्मानन्द से विलक्षण हो जाने की ही मान्यता संस्कृत सौन्दर्य शास्त्र के निर्माता तथा विवेचक आचार्यों की दृष्टि में है। भट्टनायक ने रस को 'ब्रह्मानन्द सचिवः' तथा विश्वनाथ कविराज ने 'ब्रह्मानन्द सहोदरः' कहा है, 'ब्रह्मानन्द रूपः' नहीं कहा।

मुख्य रस के विषय में संस्कृत के मर्मज्ञों में ऐकमत्य नहीं है। अभिनवगुप्त शान्त रस को, भवभूति करुण रस को तथा भोजराज श्रृंगार रस को मुख्य अथवा मूल रस अंगीकार करते हैं। श्रृंगार की ओर ही आलोचकों का अधिक झुकाव है और इसीलिए यह सामान्यतया 'रसराज' के नाम अभिहित किया जाता है।

इस प्रकार संस्कृत साहित्य में सौन्दर्यशास्त्र संवेदनात्मक–भावनात्मक गुण–धर्म और मूल्यों का अध्ययन है। कला, संस्कृति और प्रकृति का प्रतिअंकन ही सौन्दर्यशास्त्र है। किसी सुन्दर वस्तु को देखकर हमारे मन में जो आनन्ददायिनी अनुभूति होती है उसके स्वभाव और स्वरूप का विवेचन तथा जीवन की अन्यान्य अनुभूतियों के साथ उसका समन्वय स्थापित करना होता है। यही इस शास्त्र का परमलक्ष्य होता है। संस्कृत साहित्यशास्त्र में सौन्दर्य स्थापित करने के लिये सौन्दर्यतत्त्वों यथा सौन्दर्य लावण्य, माधुर्य, आनन्द का चिन्तन, आनन्दानुभव सौन्दर्य के त्रिविध तथ्यों और काव्यसौन्दर्य इत्यादि का यथोचित अपना स्थान प्राप्त करने में सफल होती है।

सन्दर्भ–ग्रन्थ

1. ऋग्वेद 1/123/10।
2. भागवत, 10/53/52।
3. आचार्य आनन्दवर्धन, ध्वन्यालोक, 1/4।
4. आचार्य आनन्दवर्धन, ध्वन्यालोक, 1/4।
5. अभिनवगुप्त, लोचनटीका।
6. रुपगोस्वामी, उज्ज्वलनीलमणि।
7. महाकवि कालिदास, अभिज्ञानशाकुन्तलम्, 1/24।
8. रुपलक्ष्मणस्वामी, उज्ज्वलनीलमणि।
9. महाकवि कालिदास, अभिज्ञानशाकुन्तलम्, 1/19।
10. तैत्तिरीय उपनिषद्, 3/6।
11. महाकवि माघ, शिशुपाल वध, 4 सर्ग, 17 पद्य।
12. महाकवि कालिदास, अभिज्ञानशाकुन्तलम्, 5/2।
13. तैत्तिरीय उपनिषद्, 2/8।
14. भामह, काव्यालंकार, 5/3।